पश्चिमी राजस्थान में सूखा प्रबंधन द्वारा फसल संरक्षण

महेश कुमार गौड़ एवं राजेश कुमार गोयल

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर
ई–मेलः maheshjeegaur@yahoo.com

सारांश

भारत में वर्षा और जलवायु परिस्थितियों में उच्च अस्थायी और स्थानिक विविधताओं की वजह से अलग–अलग तीव्रता में लगभग हर वर्ष सूखा पड़ता है। देश के करीब 68 प्रतिशत भूभाग में अलग–अलग डिग्री के सूखे का खतरा रहता है। सूखे का आर्थिक, पर्यावरण और सामाजिक प्रभाव बदलता रहता है। सूखे की वजह से कृषि में होने वाला नुकसान किसानों की आमदनी और उनके क्रय शक्ति को प्रभावित करता है। पेयजल आपूर्ति की कमी और खाद्य असुरक्षा, चारे की कमी, पशुओं की बिक्री में कमी, मिट्टी की नमी और भू–जल तालिका का कम होना, कुपोषण, भुखमरी आदि इसके अन्य परिणाम हैं। भारत ने एक संस्थागत तंत्र बनाया है जो मंत्रालयों के बीच समन्वित कार्रवाई सुनिश्चित करता है। समुदाय, ग्राम सभा, स्वयंसेवी संगठन, इत्यादि अपनी भागीदारी द्वारा प्रबंधन में भूमिका निभाते हैं। सूखा प्रबंधन परंपराओं ने बड़े पैमानों पर लोगों के लिए प्रतिकूल परिणामों को कम कर दिया। हालांकि, इन प्रयासों को वर्षा जल संचयन और भूजल पुनर्भरण, बेसिन या सूक्ष्म स्तर पर जल का संरक्षण आदि की तरह ही पर्यावरण संरक्षण और प्रबंधन पर अधिक जोर देने की जरूरत है। पश्चिमी राजस्थान जैसे वर्षा सिंचित क्षेत्रों में कृषी कार्यों में समुन्नत प्रौद्योगिकियों के समावेश से वर्षा जल संचयन और इसके समुचित उपयोग, स्वस्थानी नमी संरक्षण, सूखा प्रबंधन रणनीति, बीज व चारा बैंक, समयानुरूप तथा सटीक कृषि और प्रभावी कृषि–सलाहकार प्रणाली में आईसीटी तकनीकों का उपयोग से सूखे का प्रभावी तौर से सामना किया जा सकता है जिससे छोटे तथा सीमांत किसान को लाभ मिलेगा। सूखे की आपदा के रोकथाम अच्छी प्रबंधन तकनीकी द्वारा संभव है।

Abstract

Droughts, in India, occur every year at varying intensities. It results due to high temporal and spatial variations in rainfall and climatic conditions. About 68 percent topography of the country is prone to drought of varying degrees. The economic, environmental and social impact of drought varies with the regional topography and other conditions. The loss in agriculture due to drought adversely affects the income of farmers and their purchasing power. Lack of drinking water supply and food insecurity, lack of fodder, reduction in sale of livestock, depletion of soil moisture and ground water table, malnutrition, starvation etc. are other possible impacts. India has created an institutional mechanism that ensures coordinated action between various ministries and institutions. Communities, *gram sabhas*, volunteer organizations, etc. play a significant role in drought management through their participation. Application of traditional values and knowledge has reduced its adverse impact on public at large scales. However, these efforts need more emphasis on environmental protection and management practices at the micro level, like rainwater harvesting and groundwater recharge, basin or water conservation. Incorporation of advanced technologies in farming operations like rainwater harvesting and its appropriate use, in-situ moisture conservation, drought management strategy, seed and fodder banks, timely and accurate farming and ICT techniques in effective agriculture and advisory system would be helpful in rain-fed areas of western Rajasthan. Drought can be effectively countered by their appropriate use, which would certainly benefit small and marginal farmers. So, mitigation of drought disaster is possible through good management techniques.

प्रस्तावना

भारतवर्ष में सूखे के बारे में सबसे पुराने उल्लेखों में से एक ''वायु पुराण'' में मिलता है। रामायण में भी राजा दशरथ के काल में सूखे का वर्णन है। महाभारत में, इक्ष्वाकुओं वंश के सम्राट मान्धाता के शासनकाल के दौरान गंभीर सूखे का उल्लेख है। महाभारत युद्ध से लगभग 160 साल पहले के लिखित अभिलेख भी हस्तिनापुर के शासक राजा शांतनु के शासनकाल में घटित कई अकालों की घटनाओं का प्रमाण देते हैं। स्वतंत्रता पूर्व के काल में (उन्नीसवीं शताब्दी में), लगातार सूखे और अकाल के बड़े विनाशकारी प्रभाव ने तत्कालीन ब्रिटिश शासकों का ध्यान आकर्षित किया। उन्होनें अकाल आयोगों की एक श्रृंखला और सिंचाई आयोग की स्थापना करके समस्या के विभिन्न पहलुओं को जानने का प्रयास किये और इन आयोगों से अपेक्षा की गई कि लोगों के संकट को कम करने के लिए उपयुक्त उपाय सुझाएं। भारतीय वित्त आयोग ने

उत्तर–पश्चिम प्रांत और पंजाब में 1880 के गंभीर अकाल और सूखे की स्थिति का उल्लेख किया है। 1942–44 में, बंगाल में महा–अकाल पड़ा। लगभग हर क्षेत्र में जबरदस्त विकास के बावजूद, सूखा हमारे समाज को लगातार परेशान करता रहा है। यहां तक कि ऐसे क्षेत्र जिनमें सामान्य रूप से क्षेत्र की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त वर्षा होती है, वे भी समय समय पर कम या अधिक अवधि के सूखे की घटनाओं का सामना करते रहते हैं।

हमारा इतिहास बताता हैं कि भारत ने अनेकानेक बार विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं जैसे भूकंप, बाढ़, सूखा/अकाल, चक्रवात, सुनामी, भूस्खलन, भू–अपरदन और कीटों (टिड्डी दल) के आक्रमण इत्यादि को झेला है। भारत की भौगोलिक अवस्थिति, जलवायु तथा अन्य भौतिक लक्षण हमें इन प्राकृतिक आपदाओं के प्रति अति संवेदनशील बनाते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात देश की जनसंख्या में अनवरत वृद्धी ने कृषक समुदाय को आपदाग्रस्त इलाकों और अन्य जोखिमपूर्ण क्षेत्रों में अधिवास करने के लिए मजबूर किया है। फसलों के नष्ट होने के लिए उत्तरदायी प्राकृतिक आपदाएं देश की अर्थव्यवस्था के साथ–साथ इससे पशुधन और फसलों की भी अत्यधिक हानि होती है। आमजन के दैनिक उपयोग की वस्तुओं की कीमतें अत्यधिक बढ़ जाती हैं जिसका भार गरीब पर अत्यधिक पड़ता हैं।

भारत की कृषि मानसून आधारित है, और मानसूनी वर्षा की प्रमुख विशेषता है कि इसकी अतिवृष्टी के कारण कहीं बाढ़ और अनावृष्टी के कारण अन्यत्र सूखे का चक्र चलता रहता है। भारत में देश का लगभग 68 प्रतिशत हिस्सा विभिन्न मात्राओं में सूखे से प्रभावित रहता है। भारत का लगभग 35 प्रतिशत हिस्सा ऐसा है जिसमें 750 मिलीमीटर और 1125 मिलीमीटर के बीच वर्षा होती है और उसे सूखा प्रभावित क्षेत्र माना जाता है, जबकि भारत के 33 प्रतिशत हिस्से में 750 मिलीमीटर से कम वर्षा होती है और इसे गम्भीर सूखा प्रभावित क्षेत्र माना जाता है। राज्य और केन्द्र की सरकारें प्राकृतिक आपदाओं से ग्रस्त किसानों को क्षतिपूर्ति और अन्य वित्तीय सहायता समय–समय पर प्रदान करती है जिससे उन्हें कृषि उत्पादों में निवेश करने और फसल उत्पादन करते रहने के लिए प्रोत्साहन स्वरुप किया जाता है।

पश्चिमी राजस्थान का भौगोलिक परिचय

राजस्थान के कुल क्षेत्रफल का 61.9 प्रतिशत भाग (कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 208,751 वर्ग किमी) उत्तर–पश्चिमी रेगिस्तानी भाग है। पश्चिमी राजस्थान का अक्षांशीय विस्तार $24^0 37'00''$ से $30^0 10'48''$ उत्तर और देशांतरीय विस्तार $69^0 29'00''$ से $76^0 05'33''$ पूर्व के मध्य हैं। इसके अन्तर्गत जैसलमेर, बाड़मेर, जोधपुर, बीकानेर, गंगानगर, हनुमानगढ़, नागौर, जालौर, चूरू, सीकर, झुंझुनूँ तथा पाली जिले आते हैं। राष्ट्रीय कृषि आयोग ने भी अरावली श्रृंखला के पश्चिम व उत्तर पश्चिम में राज्य के 12 जिलों को रेगिस्तानी घोषित किया है। अरावली का वृष्टि छाया प्रदेश होने के कारण दक्षिण–पश्चिमी मानसून व बंगाल की खाड़ी केमानसून से सामान्यतः यहाँ वर्षा नहीं होती है। अतः वर्षा का वार्षिक औसत 100–500 मिमी. रहता है। पष्चिमी राजस्थान की नदियां जैसे लूणी, बनास, जवाई, साबरमती, सूकड़ी, सागी, जोजरी, इत्यादी मुख्यतः अरब सागर से मिलती हैं। राजस्थान का पश्चिमी भूभाग मुख्यतः सूखे भी प्रभावित क्षेत्र हैं। इस क्षेत्र में वर्षा–आधारित या बारानी कृषि 11.17 मिलीयन हेक्टेयर (कुल भौगोलिक क्षेत्र का 53.49 प्रतिशत) क्षेत्र में की जाती हैं।

पश्चिमी राजस्थान के बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर और पाली जिलों में सूखा 2–3 वर्ष मेंय जालोर, नागौर, बीकानेर, सीकर, गंगानगर और हनुमानगढ़ जिलों में 3–4 वर्ष में, और चुरू व झुंझुंनु जिलों में 4–5 वर्ष में एक बार होता है। जिलेवार विभिन्न जलवायु मानदंड तालिका 1 में दिये गये हैं। यह क्षेत्र तीन कृषि–पारिस्थितिक क्षेत्रों में विभक्त हैं यथा पश्चिमी रेतीले मैदान, मध्य में जलोढ़ मैदान और नहर–सिंचिंत उत्तर के मैदान, जिन्हें पुनः 7 क्षेत्रों और 19 उप–क्षेत्रों में विभाजित किया गया।

तालिका 1. शुष्क पश्चिमी राजस्थान में जलवायु के मानदंड

जिले का नाम	औसत वार्षिक वर्षा (मि.मी.)	गुणांक का परिवर्तन (प्र.श.)	औसत वार्षिक संभाव्य वाष्पीकरण (मि. मी.)	फसल बढ़ने की अवधि (सप्ताह में)	शुष्कता सूचकांक (प्र.श.)	अकाल या सूखे के वर्ष (प्र.श.)
बाड़मेर	268	57-70	1857	8-11	86	58
बीकानेर	259	50-65	1771	9-10	84	54
चुरू	325	40-60	1578	11-13	77	55
गंगानगर	237	50-55	1662	9-10	85	59
हनुमानगढ	281					52
जैसलमेर	185	49-91	2064	4-7	91	58
जालोर	421	51-60	1561	11-12	76	60
झुंझुनु	445	36-40	1842	14-15	80	55
जोधपुर	340	35-55	1562	9-12	74	59

नागौर	383	33-50	1650	11-14	75	62
पाली	472	41-55	1641	14-16	79	56
सीकर	460	35-40	1532	12-15	70	56

मानसून के समय पर न होने अथवा अपर्याप्त होने की स्थिति को 'सूखा' पड़ता है। अपर्याप्त सिंचाई के कारण फसलों के न होने, पेय जल की कमी और ग्रामीण तथा शहरी समुदाय को संकट का सामना करना पड़ता है। राज्य सरकारें अपने राज्य अथवा राज्य के किसी एक भाग के लिए सूखा घोषित करती है।

सूखे को नियंत्रित करने और स्थिति को संभालने के उपाय

भारत में सूखे को नियंत्रित करने और स्थिति को संभालने के लिए किए जाने वाले मुख्य उपाय निम्नानुसार हैः–

अ. निगरानी और शीघ्र चेतावनी

भारतीय मौसम विज्ञान विभाग नियमित रुप से देश में सूखा संबंधी निगरानी और मूल्यांकन का कार्य करता है। केन्द्र और राज्य के कृषि विभाग ऐसी स्थिति से निपटने के लिए आपातकालीन योजनाएं तैयार करते है जो किसानों को सूखा जैसी स्थिति में फसलों को बचाने में उपयोगी होती हैं।

ब. सूखे की घोषणा

राज्य अथवा तहसील के स्तर पर निरंतर वर्षा की निगरानी की जाती हैं और सूदूर संवेदी तकनीकों से सूचनाओं को एकत्र किया जाता हैं। उपग्रह से प्राप्त आंकड़ो और भौगोलिक सूचना तंत्र से सूखा प्रमाणित होने पर राज्य सरकार सूखे की स्थिति की घोषणा करती है। तत्पश्चात केन्द्र सरकार सूखे से प्रभावित लोगों को राहत देने करने के लिए वित्तीय और संस्थागत प्रक्रियाओं के द्वारा समुचित सहायता प्रदान करती है।

स. सूखे के प्रभावों की निगरानी और प्रबंधन

केन्द्र सरकार वित्त आयोग द्वारा तैयार किए गए सहायता मानदण्डों के अनुसार समुचित वित्तीय सहायता प्रदान करता है। राज्यों को सहायता आपदा राहत कोष के रूप में दी जाती है।

सूखे या अकाल के दुष्प्रभाव

देश की समग्र अर्थव्यवस्था पर सूखे का प्रभाव व्यापक (राज्य और राष्ट्र स्तर) और सूक्ष्म (ग्राम और कुटुम्ब) स्तरों पर स्पष्ट दृष्टीगोचर होता है। सूखे का प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष होने के साथ–साथ इसकी प्रकृति और तीव्रता में भी भिन्नता हो सकती हैं। सूखे के प्रत्यक्ष प्रभावों को चार व्यापक श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है, अर्थात् भौतिक, सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय। सूखे के प्रारंभिक प्रत्यक्ष भौतिक प्रभाव, उत्पादन क्षेत्रों के अलावा, अर्थव्यवस्था पर स्पष्टतः दृष्टीगोचर नहीं होते है, हालांकि प्रत्येक प्रभाव के सापेक्ष और पूर्ण परिमाण विशिष्ट विशेषताओं पर निर्भर करता हैं। सूखा फसल, पशुधन और उत्पादक पूंजी की क्षति के रूप में, पानी की कमी या संबंधित बिजली कटौती के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में संपत्ति की हानि को प्रभावित करता है। औद्योगिक क्षेत्र में कृषि आधारित उद्योग प्रत्यक्षतः प्रभावित होते हैं, क्योंकि कृषि प्रसंस्करण निविष्टियों में निम्न घरेलू उत्पादन से गैर–कृषि उत्पादन कम हो जाता है। पानी की घरेलू उपलब्धता भी प्रतिबंधित है। इस बाद के पहलू में स्वास्थ्य और घरेलू गतिविधियों के लिए निहितार्थ हैं क्योंकि पानी इकट्ठा करने के लिए समय का भी निवेश करना पड़ता हैं। जैसे–जैसे पानी की कमी होती जाएगी, विभिन्न सेक्टरों के बीच अन्तः प्रतिस्पर्धा बढ़ती जायेगी।

शुष्क पश्चिमी राजस्थान में बारानी या वर्षा–आधारित कृषि का महत्व

बारानी या वर्षा–आधारित कृषि जटिल, विविध और जोखिम से भरी होती है और निम्न स्तर की उत्पादकता और कम इनपुट का उपयोग करना इसकी विशेषता है। वर्षा आधारित फसलें के अंतर्गत आने वाली कुल फसलों में खाद्य फसलें 48 प्र.श. क्षेत्रफल में बोई जाती हैं और 52 प्र.श. क्षेत्रफल गैर–खाद्य फसलों के अंतर्गत हैं। कुल कार्यबल का लगभग 50 प्र.श. और 60 प्र.श. पशुधन शुष्क क्षेत्रों में ही केंद्रीभूत हैं। अधिकांश मोटे अनाज बारानी क्षेत्रों में ही उगाए जाते हैं। खाद्यान्न के अलावा, ये क्षेत्र यहाँ के लाखों पशुओं को चारा और चारा सामग्री भी प्रदान करते हैं। सामान्य रूप से जलवायु, विशेष रूप से कृषि की परिस्थिति और फसल की उपज का एक प्रमुख निर्धारक घटक है। थोरट (1993) के अनुसार सिंचाई के तहत सकल फसली क्षेत्र का 10 प्रतिशत से भी कम है और 375 से 750 मिमी औसत वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्र वर्षा आधारित शुष्क भूमि के तहत वर्गीकृत किया गया है। हमारी कृषि योग्य भूमि का तीन–चौथाई (143 मिलियन हे.) बारानी के अंतर्गत है। 90 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र ज्वार, मूंगफली और दालें के अंतर्गत है। मक्का और चना के मामले में 82 से 85 प्रतिशत क्षेत्रफल और 66 प्रतिशत क्षेत्रफल तारामीरा/सरसों बारानी के अंतर्गत है। दिलचस्प बात यह है कि 62 प्रतिशत क्षेत्रफल चावल, 44

प्रतिशत जौ और 35 प्रतिशत गेहूं के अंतर्गत है। संसाधनों की कमी वाले शुष्क क्षेत्रों में खेती एक विकास उन्मुख गतिविधि के बजाय अस्तित्व बचाने वाला तंत्र ज्यादा है।

मानसून की देरी होने से, जल संकट उत्पन्न हो जाता हैं, जिसके कारण बारानी फसलों की वृद्धि को नुकसान होता हैं। यह जल संकट वर्षा की परिवर्तनशीलता, बुवाई में देरी, फसल प्रबंधन में विविधता, उत्पादन और मिट्टी के प्रकार की परिवर्तनशीलता के कारण हो सकता है। मानसून के लंबे समय तक की देरी होने से फसल आंशिक या पूर्ण विफल हो जाती है। बारिश की मात्रा, तीव्रता और वितरण प्रतिरूप के आधार पर वर्षा–आधारित फसलों की बुवाई और उत्पादन में उतार–चढ़ाव की प्रवृत्ति दर्शाता है। सूखे के दौरान फसल उत्पादन बहुत घट जाता है।

पशुधन की जनसंख्या पर 1962, 1972, 1988 और 2007 के अकाल की आपदा का दुष्प्रभाव पड़ा, और इस कारण जानवरों को जबरदस्ती मुक्त किया गया और कम दाम पर भी बेचना पड़ा। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, पश्चिमी राजस्थान की मानव जनसंख्या 27.12 मिलियन है जबकी 2012 की पशु जनगणना, 30.18 मिलियन पशुधन है। मानव जनसंख्या का घनत्व परिवर्तनशील है, यथा जैसलमेर जिले में 17 और झुंझुनु में 361 हैं जबकी पशुधन की जैसलमेर में 83 और सीकर में 274 हैं।

सूखे की स्थिति में फसलों का संरक्षण

दीर्घावधी के लिए होने वाले सूखे का फसलों पर गंभीर प्रभाव पड़ सकता है। वर्षा की मात्रा में कमी होने से फसल और चारा के पोधों की विकास में कम आती है और अंततः फसल बर्बाद हो सकती है। कमजोर पौधे भी बीमारी और कीड़ों के लिए अतिसंवेदनशील होते हैं। सूखे की स्थिति भी मिट्टी की उपरी परत के पवन द्वारा क्षरण के स्तर को बढ़ा सकती है और आग के जोखिम को बढ़ा सकती है। समय पद बनायी गई अग्रीम योजना सूखे की स्थिति के दौरान किसानों की फसलों को बचाने में मदद कर सकती है।

अ. सूखा आगमन से पूर्व की तैयारी

(i) फसल प्रबंधन की योजनाः–

- ऐसी फसलों का चयन करना जो सूखापन झेल सकती हैं, पानी का कम उपयोग करती हैं, और सिंचाई की कम आवश्यकता पड़ती हैं।
- फसलों की अदला–बदली इस प्रकार से कि जायें जिससे मिट्टी में नमी की मात्रा बढ़े।
- इस प्रकार से फसल चक्र में बदलाव कियें जायें जिनकी पानी पर निर्भरता कम हों और मौजूदा चक्र की तुलना में बेहतर हो।

(ii) भूमि प्रबंधन योजनाः–

- सूखा होने की स्थिति में, सूखे से पहले किया गया अच्छा भूमि प्रबंधन अधिक लचीलापन प्रदान करता है।
- मृदा को स्वस्थ बनाये रखती हैं।
- चरागाह क्षेत्रों पर पशुधन की संख्या को संतुलित करनाय अत्यधिक चराई की इजाजत न देता हैं।
- न्यूनतम जुताई तकनीक का उपयोग करने का प्रयास करें।
- गत वर्ष के फसल अवशेषों को खेत में ही छोड़ देने से मिट्टी की उपरी परत में उपस्थित नमी के वाष्पीकरण को कम करने में मदद मिलती है।
- अपवाह, कटाव, मृदा ह्रस को कम करने के लिए परंपरागत संरक्षण प्रथाओं का उपयोग करें और मिट्टी में पानी के रिसाव को प्रोत्साहित करना।
- धाराओं और पानी के अन्य स्रोतों के पास नदी–तट प्रतिरोधी, निस्पंदन पट्टीकाऐं, घास वाले जलमार्ग और अन्य प्रकार के संरक्षण निस्पंदन स्थापित करें।
- परंपरागत संरक्षण उद्यम जैसे कि फसल चक्रण, समोच्च पंक्ति फसल, सीढ़ीदार, विंडब्रेक, आदि का उपयोग करें।

(iii) यदि वर्तमान में सिंचाई प्रणाली का उपयोग किया जा रहा है तो,

- वर्षा, जलाशयों में भंडारण जल का स्तर, सतह और भू जल स्तंर और सूखे की परिस्थितियों में फसल की बुवाई आदि को सूखे का प्रमुख संकेतक माना जाता है। जल शक्ति मंत्रालय केन्द्रीय जल आयोग और केन्द्रीय भू–जल बोर्ड के माध्यम से वैज्ञानिक डाटा, जलाशयों, तालाबों, झीलों में जल का भंडारण, नदी प्रवाह, भूजल उत्पादन और जलभर क्षेत्रों से जल निकास, वाष्पीकरण जल–हानि, जल का टपकना, जल के रिसाव की निगरानी करता है।
- किसान सिंचाई प्रणाली का इस प्रकार से चयन करें जो वाष्पीकरण, छिद्रण और अपवाह द्वारा पानी के नुकसान को कम करेगा।
- किसानों को मौजूदा सिंचाई प्रणाली को अधिक कुशल बनाकर रखना चाहिये और जो रखरखाव में भी आसान हो।

- खेत में जल भंडारण प्रणाली अर्थात् टांका इत्यादी का निर्माण समय रहते ही कर लेने से सिंचाई की आवष्यकता पड़ने पर उपयोग किया जा सकता हैं।
- कुओं, नलकूपों पर जल उपयोग मापक यंत्रों लगाने से जल के उपयोग की समयबद्ध निगरानी रखी जा सकती हैं।
- जल के वैकल्पिक स्रोतों (जैसे, गहरे पुराने कुएं, टांकें, बावड़ी, पुराजल) की पहचान करें जिससे फसल के नाजुक दौर में सिंचाई की व्यवस्था की जा सके।

(iv) खरपतवार प्रबंधन और नियंत्रणः—

- खरपतवार, अन्य पौधों की तरह बड़ी मात्रा में पानी का उपभोग करते हैं। पानी के लिए प्रतिस्पर्धा होने से फसल उत्पादन में कमी हो जाती है।
- पानी की कमी से शाकनाशी प्रभाव में कमी आ सकती है क्योंकि अधिकांश शाकनाशियों की प्रभावकारिता पानी पर निर्भर करती है।
- यांत्रिक तरीके से खरपतवार नियंत्रित करने के उपायों की भी कभी—कभी आवश्यकता हो सकती है।

(v) सूखा प्रबंधन गणकः—

- चारा उत्पादन पर पड़ने वाले सूखे के प्रभावों का आकलन करने में मदद करने के लिए यह एक उपकरण है, जो किसानों को बेहतर रणनीति बनाने के लिए सहायता करता हैं और सूखे का सामना करने के लिए वैकल्पिक रणनीति तैयार करने में सक्षम करता हैं।

ब. सूखे के बाद की परिस्थिति में किये जाने वाले उपायः—

(i) किसान अपने खेत की मिट्टी का परीक्षण करवाएं

- शाकनाशी और रासायनिक उर्वरकों की वर्षों तक ढुलाई हो सकती है, इसलिए सूखे वर्ष के बाद मिट्टी का परीक्षण करना बहुत महत्वपूर्ण है।

(ii) यदि किसान पशुधन को सूखे से क्षतिग्रस्त और प्रभावित फसलें (जैसे, चारा) खिलाने की योजना बनाते हैं, तो निम्न तथ्यों से अवगत होना भी बहुत जरुरी हैं।

- सूखे की परिस्थिति में, चारे में पोषक तत्वों और गुणवत्ता में कमी तथा रसीलेपन की भी कमी (और प्रोटीन सामग्री) आ जाती है।
- सूखा चारा जानवरों के लिए पचाने में कठिन और कष्टकारी होता हैं।
- सूखे की स्थिति, पौधों में विषाक्तता (जैसे, नाइट्रेट्स, माइकोटॉक्सिन) को बढ़ाती है।
- चारा और चरी खिलाने से पहले, चारे में उपलब्ध पोषक तत्व सामग्री और संभावित विषाक्त पदार्थों के लिए इसका परीक्षण करवाना चाहिये जिससे पशुधन के स्वास्थ्य पर कोई कुप्रभाव न पड़े।

सूखा रोकने के उपाय

सिंचाई को सूखा रोकने के सबसे प्रभावी तंत्र और कृषि उत्पादन में स्थिरता लाने के बड़े उपाय के रूप में माना जाता है। भंडारण बांधों का निर्माण करने से जरूरत के समय पानी का उपयोग करके सिंचाई करने में सुविधा मिलती है। इस प्रकार सिंचाई परियोजनाओं के कमान क्षेत्र के तहत आने वाले सूखा प्रभावित क्षेत्रों को पूरे वर्ष के दौरान सुनिश्चित सिंचाई जल आपूर्ति प्रदान की जाती है।

जल शक्ति मंत्रालय ने त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम, कमान क्षेत्र विकास और जल प्रबंधन कार्यक्रम तथा जल निकायों का सुधार, नवीकरण और प्रतिरक्षण करने जैसी स्कीमों के माध्यम से सिंचाई परियोजनाओं को तकनीकी और वित्तीय सहायता प्रदान करके परियोजनाओं को समय से पहले पूरा करने के लिए राज्य सरकारों को प्रोत्साहित किया है।

उपसंहार

''सूखा'' शब्द पारिस्थितिक तंत्र, भूमि और मानव उपयोग के लिए पानी की कमी को इंगित करता है, जिसके परिणामस्वरूप फसलों, पशुधन, आजीविका और मानव स्वास्थ्य पर संकट आता है। सूखा एक जटिल प्राकृतिक आपदा है, जिसका प्रभाव अक्सर क्षेत्र के सामाजिक—पर्यावरणीय पृष्ठभूमि की प्रकृति पर निर्भर करते हैं, और किसी भी अन्य आपदा की तुलना में अधिक लोगों को प्रभावित करते हैं। अब आपदा प्रबंधन के स्वरुप में इसे मुख्य रूप से मौसम संबंधी या भौतिक घटना के रूप में नहीं देखा जाता है, बल्कि एक जटिल पर्यावरणीय या सामाजिक चुनौती के रूप में देखा जाता है। व्यवहार्यता या पानी की गुणवत्ता के मामले में जल संसाधनों की अनुपलब्धता, वाष्पीकरण के कारण पानी की कमी, भूजल का अत्यधिक दोहन और अपव्यय, गैर—कृषि और गैर—मानवीय उद्देश्यों के लिए पानी का अधिक उपयोग इत्यादि कृषि सूखा और

पारिस्थितिक संकट को बढ़ावा देने वाले गुण हैं। अधिकांश सूखा प्रबंधन रणनीतियाँ, मैनुअल और दिशानिर्देश अभी भी सूखे के इन पहलुओं के वैज्ञानिक या रणनीतिक प्रासंगिकता को पैदा करने या खराब होने की स्थिति को पहचानने में सक्षम नहीं हैं। जलवायु परिवर्तन और अनुकूलन जागरूकता ने आपदा प्रबंधन के लिए प्राकृतिक संसाधन और पारिस्थितिकी तंत्र के दृष्टिकोण पर ध्यान देने की आवश्यकता को महसूस किया है। दीर्घावधी तक सूखे के जोखिम प्रबंधन के लिए अग्रिम पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन के उपयुक्त मॉडल विकसित किए जा सकते हैं। जबकि सूखा प्रबंधन के लिए वानिकी, जलग्रहण, सार्वजनिक स्वास्थ्य, प्रदूषण नियंत्रण, आर्द्रभूमी संरक्षण, और जैवविश्लेषण अवधारणा के कार्यक्रमों के साथ एकीकरण को अब मान्यता प्राप्त है, महामारी, जंगल की आग और कीट, पर्यावरणीय स्वास्थ्य, बिजली उत्पादन और सामाजिक–राजनीतिक के प्रबंधन के जोखिम को अभी भी संस्थागत रूप देने की आवश्यकता है। "शहरी सूखे" और "जलावलम्बी उद्योगों" के मुद्दों को प्रबंधन की दृष्टी से पहचानना भी महत्वपूर्ण है और समय की मांग हैं।